National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

**ISSN: 2454-9177**
NJHSR 2019; 1(25): 128-130
© 2019 NJHSR
www.sanskritarticle.com

**डॉ. अंजन कुमार**
एसोसिएट प्रोफेसर,
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

**Correspondence:**
**डॉ. अंजन कुमार**
एसोसिएट प्रोफेसर,
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

# दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य एवं सम्भावनाएं

**डॉ. अंजन कुमार**

हिंदी साहित्य में 21वीं शताब्दी विमर्श का युग माना जाता है। शताब्दी में हिंदी विमर्श के उत्थान एवं प्रसार को लेकर कई और अवधारणाएं प्रचलित हैं लेकिन उनमें सबसे महत्वपूर्ण अवधारणा भूमंडलीकरण एवं उसके फलस्वरुप प्रसारित होती हुई उत्तर आधुनिकता को माना जाता है। हिंदी साहित्य में पिछले दो-तीन दशकों में आदिवासी विमर्श एवं दलित विमर्श ने अपनी एक नई पहचान बनाई है। इन विमर्शों के उत्थान एवं प्रसार के साथ कुछ वाजिब प्रश्न हमारे समक्ष प्रकट हुए हैं। महत्वपूर्ण है कि सदियों से वंचित रहे दलित वर्ग को पहचान दिलाने के साथ-साथ सशक्त करने में भी विमर्शों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विमर्श केवल साहित्य तक सीमित नहीं है बल्कि उसका क्षेत्र समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, संस्कृति विमर्श, एंथ्रोपॉलजी इतिहास, विज्ञान एवं मनोविज्ञान को भी समाहित करता है। यही कारण है कि इधर दलित साहित्य में साहित्य के उस धारा को प्रश्नांकितकिया है जिसने लंबे समय तक केवल सक्षम वर्गों के इतिहास को स्थान दिया अथवा साहित्य समाजशास्त्र, इतिहास एवं अन्य क्षेत्रों में भी उन्हीं के अनुसार अपनी मान्यताओं को प्रस्तुत किया। प्रस्तुत इन सभी क्षेत्रों में दलितों एवं पिछड़ों के लिए विचार की कोई गुंजाइश नहीं बनती दिखाई देती थी। इधर यह सभी क्षेत्र इसीलिए पुनर्विचार की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाते हैं। दलित साहित्य एक परिवर्तनकारी आंदोलन भी है जो दलित समाज की अभिव्यक्ति के साथ-साथ सदियों से होते आए इस शोषणकारी व्यवस्था के प्रति अपना विरोध जताने का सक्षम प्रयास करता है।[i]

दलित साहित्य, प्रचलित साहित्य के मानदंड उनकी मान्यताओं एवं अभिव्यक्ति के साधनों को नकारने के साथ दलित जीवन की पहचान को स्थापित करते हुए एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को आवाहन करता है जिसमें इस तरह के शोषण जारी सामाजिक व्यवस्था के प्रति नकारात्मक भाव हो और बाबा साहब अंबेडकर द्वारा प्रतिपादित मूल्यों का संरक्षण भी किया जा सके। प्रसिद्ध दलित चिंतक एवं विचारक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इसीलिए दलित साहित्य के विकास के साथ-साथ इस बात पर भी बल दिया कि दलितों को अपनी जीवन संस्कृति, अपने इतिहास एवं अपनी भाषा की अलग लड़ाई लड़नी होगी एवं उसे पहचान भी दिलानी होगी। आलोचक बजरंग बिहारी तिवारी लिखते हैं- "दलित साहित्य को साहित्य के रूप में लंबे समय तक मान्यता ना मिलने की मुख्य वजह यहसवर्ण सोच ही थी। दलित रचनाकारों ने इस मान्यता की ज्यादा परवाह ना करते हुए अपना काम किया। एक प्रांत विशेष में उभरे दलित साहित्य में अखिल भारतीय स्तर पर अपनी जगह बनाई। आज दलित साहित्य भारतीय साहित्य का मुख्य स्वर है।"[ii] दलित साहित्य ने चले आ रहे साहित्य धारा को नई ऊर्जा देने का कार्य भी किया है।

इस लड़ाई के माध्यम से ही दलितों के प्रति व्याप्त अमानवीय भाव को उखाड़ फेंकने के साथ-साथ दलित समाज में उस आत्मविश्वास को भी प्राप्त किया जा सकता है जिसे सदियों के शोषण ने धीरे-धीरे समाप्त कर दिया था।उसे अपनी अस्मिता और अपनी अभिव्यक्ति के महत्व को पहचानने से वंचित कर दिया गया था, इसे पुन: प्राप्त करना आसान न था,अपनी पुस्तक दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं - "कोई भी संस्कृति धर्म नहीं होती, वह जीवनशैली होती है।बाबासाहेब ने इस जीवनशैली में समय के अनुसार भी बदलाव लाने की बात कही है। धर्म की लकीर का फकीर नहीं बल्कि स्वयं अपनी राह गढ़ने वाली नव-संस्कृति के निर्माण की बात की है बाबा साहेब ने। आओ इस तर्कपूर्ण वैज्ञानिक नव संस्कृति की शुरुआत करें।[iii]" दलित साहित्य इन्हीं प्रतिबद्धताओं के कारण अधिक वैज्ञानिक, तार्किक एवं मानवीय प्रतीत होता है। किसी भी प्रकार के शोषण के प्रति दलित साहित्य में विरोध एवं विद्रोह का भाव दिखाई देता है। दलित किसी जाति विशेष अथवा समुदाय विशेष को संबोधित करने के बजाय उन सभी पिछड़ों का प्रतीक है - "भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलित का अभिप्राय उन लोगों से है, जिन्हें जन्म, जाति या वर्णगत भेदभाव के कारण हजारों सालों से सामाजिक न्याय और मानव अधिकारों से वंचित रहना पड़ा है।"[iv] जो किसी ना किसी कारण से समृद्ध एवं सवर्णों द्वारा शोषित किए जाते रहे। दलित साहित्य इसीलिए आत्मुन्मुखी होने की अपेक्षा सामाजिक रूप से प्रतिबंध दिखाई देता है। दलित साहित्य में की गईकोई भी अभिव्यक्ति व्यक्ति विशेष से संबंधित होने पर भी अपने समाज की संपूर्ण पीड़ा को एक साथ मुखरित रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास अवश्य ही करती है। आज दलित साहित्य में आत्मकथाओं का विशेष स्थान है, इसके अलावा उपन्यास, कहानी, डायरी, आलोचना एवं कविता सहित विभिन्न विधाओं में जो भी अभिव्यक्ति हो रही है वह सभी उस सामाजिक विद्रोह का प्रतिरूप माना जा सकता है जिसकी परिकल्पना स्वयं डॉ.बाबासाहेबआंबेडकर ने की थी।

दलित साहित्य के साथ एक प्रश्न बहुतायत में लिखे जा रहे साहित्य प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है कि वह केवल दलित अभिव्यक्ति तक ही सीमित है, यहां यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि बहुतायत साहित्य से अपने आप को अलगाते हुए दलित या विमर्शात्मक साहित्य की अपनी पहचान के प्रति इतना गंभीर क्यों है। इस प्रश्न में ही इस सवाल का उत्तर भी छिपा हुआ है। दलित उत्थान एवं स्वतंत्रता के साथ मिले संवैधानिक समानता के अधिकार के बावजूद आज भी भारत के बहुतायत दलित समाज को शोषण अपमान की पीड़ा एवं जातीय त्रासदी का प्रत्येक क्षण सामना करना पड़ता है। किसी भी संघर्ष में उनकी जातीय पहचान उनकी सबसे बड़ी बाधा बनकर उभरने लग जाती है, इसके साथ-साथ विभिन्न प्रकार की ऐसी शक्तियां आज भी हमारे समाज में अपनी मजबूत पकड़ बनाए हुए हैं जो वर्ण व्यवस्था केडर को बनाए रखते हुए शोषण की इस परंपरा का उन्मूलन करने देना नहीं चाहते। आंकड़ों के माध्यम से अगर बात की जाए तो सामाजिक प्रतिनिधित्व एवं किसी भी प्रकार के विकास मान स्थिति को प्राप्त करने के लिए आज भी दलित समुदाय सक्षम नहीं हो पाया है। सदियों से चली आ रही उसकी समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। अस्पृश्यता, दैनिक एवं मानसिक शोषण, गरीबी अशिक्षा सहित तमाम तरह की समस्याएं ज्यों की त्यों बनी हुई है। इन समस्याओं के यूँ ही बने रहने की स्थिति में यह अपेक्षा करना पूर्ण रूप से गलत है कि दलित समुदाय को अपनी सामुदायिक एवं जातीय पहचान से आगे बढ़कर इस आंदोलन को छोड़ देना चाहिए। बल्कि यह कहना ज्यादा उचित होगा कि अपनी लड़ाई को तेज करने के लिए दलित साहित्य को अपनी अस्मिता के प्रति और अधिक सचेत होना होगा और इन समस्याओं को सामने लाते हुए अवरोधात्मक स्थितियों के लिए अपना विद्रोह और विरोध साहित्य के माध्यम से भी पुख्ता करना होगा।महत्वपूर्ण है कि, "दलितों में अपनी अलग संस्कृति के निर्माण की भावना पनपी है। इस संस्कृति के सवाल पर कई विद्वानों की भवें टेढ़ी हो जाती हैं। जो अभी तक दलित साहित्य की अवधारणा को ही स्वीकार नहीं कर पाए, दलित संस्कृति के नाम से ही आहत महसूस करेंगे।[v]" यही कारण है कि जहां लंबे समय से सत्तावादी समुदाय द्वारा दलित साहित्य को अस्वीकृत किया जाता रहा है वही उतनी ही तेजी से दलित साहित्य अपनी पहचान बनाने के लिए त्वरित एवं ऊर्जावान दिखाई देता है।

आज दलित साहित्य के अंतर्गत लेखिकाओं ने अलग प्रकार की पहचान बनाई है। स्त्री साहित्यकारों ने वर्ण व्यवस्था की घृणित मानसिकता को उभारने के साथ-साथ लैंगिक तौर पर होने वाले दोयम दर्जे के व्यवहार को भी जाति के भीतर ही चिन्हित करने का प्रयास किया है। ज्ञातव्य है कि इधर लिखी जाने वाली स्त्री कविताओं में बड़ी संख्या उन कवयित्रियों की है जिन्होंने जातिगत दंश को झेलते हुए लैंगिक विभेद को भी झेला है।[vi] स्त्री साहित्यकारों का उल्लेख दलित साहित्य के परिप्रेक्ष्य में इसलिए भी आवश्यक हो जाता है क्योंकि विमर्श के अंतर्गत नए व्यवस्थाओं का उत्थान इस बात का भी प्रतीक है कि इस साहित्य की धारा में बहुत सी संभावनाएं छुपी हुई हैं और अपने समाज को आमूल-चूल परिवर्तन के लिए प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं।

स्त्री साहित्यकारों के अतिरिक्त स्थानीय दलित समुदायों ने अपनी अस्मिता एवं पहचान के प्रति भी जागरूकता दिखाई है। इधर कई ऐसी साहित्य कृतियां देखने को मिलती हैं जो स्थान

विशेष अथवा प्रदेश विशेष में शोषण की विशेष प्रवृत्ति को प्रदर्शित करते हैं। दलित साहित्य के साथ प्रादेशिक आंदोलनों का एक लंबा इतिहास जुड़ा हुआ है। इन प्रादेशिक आंदोलनों ने ही राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में अपना विकास किया, इसलिए भारत के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले जाती प्रताड़ना को पहचानना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। वर्ण व्यवस्था की जड़ें इतनी गहरी रही है कि उनको एकदम से समाप्त कर पाना संभव नहीं है इसलिए इस तरह के प्रयास अथवा इस तरह की साहित्यिक कृतियां उन जड़ों तक पहुंचने का माध्यम बनती है जहां सामान्य रूप से नहीं पहुंचा जा सकता। यह कृतियां इस बात को भी पुख्ता करती है कि आने वाले समय में किसी भी स्थान पर वर्ण के आधार पर शोषण की गुंजाइश ना बनी रहे और यह केवल तभी संभव है जब भारत के प्रत्येक हिस्से में रहने वाला दलित वर्ग अपनी चेतना को जागृत करें और अपने संवैधानिक अधिकारों के लिए पूर्ण रूप से तैयार रहें।रमणिका गुप्ता के शब्दों में " दलित साहित्य आधुनिक भारतीय साहित्य की एक विशिष्ट शाखा के रूप में उभरकर आज हिंदी वांग्मय की मुख्यधारा से जुड़ गया है। साहित्य की यह अत्यंत वेगवती अद्यतन धारा अनेक विरोधियों विरोधियों के बावजूद लगभग प्रभावित और अबाधित प्रवाह के साथ गतिशील है।"[vii]

इस तरह दलित साहित्य के रूप में आज हम उस तबके की अभिव्यक्ति को पहचानने में समर्थ हो पा रहे हैं जो दरअसल भारतीय समाज का मूल रूप है। बहुसंख्यक समाज इसी वर्ग से आता है और यही बहुसंख्यक समाज लंबे समय तक कुछ लोगों द्वारा अपने लाभ एवं अपने स्वार्थपरकता के कारण धर्म एवं जाति व्यवस्था की आड़ में लंबे समय तक शोषण का शिकार होता रहा। दलित साहित्य ने इन सभी प्रकार के अवरोधों को लांघते हुए आज वह मुकाम हासिल किया है जिसकी जितनी प्रशंसा की जाए वह कम है। इस विमर्श ने पिछड़ों को उनका स्थान दिलाने के लिए चेतना के स्तर पर भी जागृत किया है। किसी भी प्रकार के शोषण के खिलाफ सबसे पहले दलित साहित्य में खड़ा दिखाई देता है। इस साहित्य में वैज्ञानिक समाज की सोच छुपी हुई है इसलिए या किसी भी प्रकार के शोषण को स्थान नहीं देता और समाज में सभी वर्ग एवं तबके के लोगों के लिए स्थान देता है। आने वाले समय में दलित साहित्य का रुख इस बात को तय करेगा कि भारतीय समाज की पाठकीय चेतना कितनी जागृत होती है एवं भारत संविधान में उल्लेखित समाज का रूप धारण किस प्रकार करता है।

**संदर्भ:**


[i] बेचैन, डॉ.श्योराज सिंह: सामाजिक न्याय और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन, 2015, पृष्ठ भूमिका

[ii] तिवारी, बजरंगबिहारी: जनसत्ता (रविवारीय) https://www.jansatta.com/sunday-column/broken-man-dr-bhimrao-ambedkar-dalit-dalit-india-litrature/53043/

[iii] वाल्मीकि, ओमप्रकाश: दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, 2010,पृष्ठ 32

[iv] https://www.rachanakar.org/2015/08/blog post_60.html

[v] गुप्ता, रमणिका: युद्धरत आमआदमी https://yuddhrataa-maadmi.page/article/दलित-सांस्कृतिक-अस्मिता-:-कल-आज-और-कल/RkGhTN.html

[vi] वाल्मीकि ओमप्रकाश: दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, 2020, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 2

[vii] गुप्ता, रमणिका:https://yuddhrataamaadmi.page/article/दलित-सांस्कृतिक-अस्मिता-:-कल-आज-और-कल/RkGhTN.html